[ISSN : 2348-2605]

अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका

(त्रैमासिक हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान पत्रिका)

www.gejournal.net

E-mail: hindires@gmail.com

अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान
शोध पत्रिका
(त्रैमासिक हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान पत्रिका)

विद्यालयी शिक्षा में साहित्य

REENA YADAV
Ph.D. Scholar
Department of Hindi
Central University of Haryana
Narnual (Mahendergarh)

साहित्य का उद्देश्य मनुष्य में चेतना लाना है। मन के सद् विचारों को कलात्मक रूप देकर शब्दों में अभिव्यक्त करना ही साहित्य है। मौखिक अभिव्यक्ति केवल कुछ समय के लिए रहती है परन्तु लिखित अभिव्यक्ति साहित्य का रूप धरण दीर्घकाल तक स्थाई रूप ले लेती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ''मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है।'' मनुष्य का कल्याण ही साहित्य का प्रथम और अन्तिम उद्देश्य है। द्विवेदी जी ने कहा है ''मनुष्य को साहित्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूं जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखपेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्वीज न बना सके, जो उसके हृदय को परदुखःकातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।''[1]

प्रायः सभी कक्षाओं में साहित्य पढ़ाया जाता है प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक साहित्य का अध्ययन–अध्यापन होता है। पाठ्यपुस्तकें इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। पाठ्यपुस्तक की सामाजिक भूमिका को लेकर शिक्षाविदों, समाजशास्त्रियों और विद्वानों के बीच कापफी बहस होती रहती है इन मुद्दों में सर्वप्रथम मुद्दा जो पाठ्यपुस्तक की प्रासंगिकता को लेकर ही है। पाठ्यपुस्तक का असर बच्चों और शिक्षकों पर इतना गहरा है कि उससे अलग कोई भी सत्य या असत्य उनके लिए असत्य ही होता है। परन्तु गांधीजी और गुरूदेव रविन्द्रनाथ टैगोर पाठ्यपुस्तक की आलोचना करते हैं। उनके अनुसार पाठ्यपुस्तक हथियार के रूप में प्रयोग नहीं की जानी चाहिए। गांधी जी ने कहा है कि ''अगर पाठ्यपुस्तकों को शिक्षण का माध्यम माना जाएं तब तो शिक्षक की वाणी की शायद ही कोई कीमत रह

जाए। जो शिक्षक पाठ्यपुस्तकों में से सीखता है वह अपने विद्यार्थियों को स्वतंत्रा और मौलिक विचार करने की शक्ति नहीं देता इससे शिक्षक पाठ्यपुस्तक का गुलाम हो जाता है और उसे अपना स्वतंत्रा दिखाने का मौका ही नहीं मिल पाता इससे मालूम होता है कि पाठ्यपुस्तकों जितनी कम होगी उतना ही शिक्षकों और विद्यार्थियों को लाभ होगा।''[2]

परन्तु भारतीय संदर्भ में जहां विद्यालयों और विद्यालयी शिक्षकों की स्थिति से हम परिचित है। जहां पर शिक्षण सामग्री के नाम पर महज पाठ्यपुस्तक ही होती है। इसीलिए पाठ्यपुस्तक का सामाजिक दायित्व कापफी बढ़ जाता है। क्योंकि विद्यार्थी के संपूर्ण व्यक्तित्व बढ़ जाता है। क्योंकि विद्यार्थी के संपूर्ण व्यक्तित्व निर्माण का आधर होती है। पाठ्यपुस्तक विद्यालयी पाठ्यपुस्तकों में मूल्यों को लेकर कापफी विवाद और अंर्तद्वंद्व रहते है। पाठ्यपुसतकों में साहित्य के किन–किन तत्वों का समावेश हो कैसे पढ़ाया जाएं, किस उद्देश्य से पढ़ाया जाएं ये सभी तथ्य मायने रखते है। मानवीय और संस्थागत विकास के लिए साहित्य और संस्कृति का सामाजिक होना आवश्यक है। समाज ही साहित्य और संस्कृति को रचता और चलाता है। सूचना प्रोद्योगिकी के जमाने में साहित्य और संस्कृति द्वारा सामाजिकता निभाई जा सकती है। उपभोक्तावादी मानसिकता के जमाने में साहित्य और संस्कृति द्वारा सामाजिकता निभाई जा सकती है। उपभोक्तावादी मानसिकता के चलते क्षेत्रीय और प्रादेशिक विरासत को साहित्य के माध्यम से सहज कर रखा जा सकता है।

प्रश्न यहां पर यह उठता है कि विद्यालयी शिक्षा में साहित्य कैसा हो? क्या वह लोकप्रिय हो, मुख्यधरा का साहित्य हो, भारतीय संस्कृति का बखान करने वाला हो अथवा सुप्रसि(लेखकों की रचनाओं का साहित्य हो। शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यवहार में और उसकी मानसिकता में परिवर्तन लाना होता है। अतः अनेक शासक इस कार्य के विद्यालयी पुस्तकों को औजार के रूप में प्रयुक्त करते है। इन पाठ्यपुस्तकों को अध्यापक एवं विद्यार्थियों के साथ उनके माता–पिता, सगे–सबंधी और अन्य भी पढ़ते है। जिससे पाठ्यक्रफम और पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से वे अपनी विचारधरा को ज्यादा से ज्यादा क्षेत्राों में पैफला सकें अपना प्रभाव आम जनता पर डाल सके शिक्षाविद जी.एल. अरोड़ा ने लिखा है ''प्रथम विश्वयु(के बाद यूरोप की सभी पाठ्यपुस्तकों का पुननिरीक्षण किया गया और यु(की प्रशंसा करने वालों और विभिन्न देशों, धर्मो और जातियों के बीच घृणा पफैलाने वाले प्रसंग निकाल दिए

गए। जर्मनी आदि पफासिस्ट देशों में बच्चों के मन में संकुचित राष्ट्रीयता की भावनाएं पाठ्यपुस्तकों के द्वारा भी भरी गई।''[3]

राजनीति सदैव से ही शिक्षा और पाठ्यक्रफम को प्रभावित करती रही है। हिंदी पाठ्यपुस्तक के उद्भव में शिवप्रसाद सितारेहिंद का नाम सदा आदर से लिया जाता रहेगा। इसके अतिरिक्त ज्ञान–विज्ञान के आधुनिक विषयों जैसे – भूगोल, इतिहास, पदार्थ आदि पर पहली बार आसान मुहावरेदार हिंदी में पाठ्यपुस्तक तैयार की। विद्याकुर, बालबोध, छोटा, भूगोल हस्तमलक इतिहास तिमिरनाशम आदि ज्ञान और साहित्य में पुस्तकें लिखी 1867 में प्रकाशित हिंदी की पाठ्यपुस्तक के संदर्भ में वीर भारत तलवार लिखते हैः–''यह शिवप्रसाद का बड़प्पन या जनतांत्रिात उदारता थी कि इस संग्रह में उन्होनें तुलसीदास, बिहारीलाल और अपनी रचनाओं के अलाा लल्लूलाल, इंश अल्ला खाँ और लक्ष्मण सिंह की रचनाओं को भी शामिल किया जिनकी भाषाओं पर उन्हें ऐतराज था। इंशा की रानी केतकी की कहानी, लल्लूलाल के प्रेमसागर और लक्ष्मण सिंह के शकुंतला ;अनुवादद्ध को शामिल करने का मकसद हिंदी में प्रचलित नई और पुरानी जयादा से मकसद हिंदी में प्रचलित नई और पुरानी ज्यादा से ज्यादा लेखन शैलियों से पाठकों को परिचित कराना था।''[4]

शिवप्रसाद सितारे हिंद की इतिहास की पुस्तक 'इतिहास तिमिर नाशक' मुगल शासन की तीव्र आलोचना करने के कारण पाठ्यपुस्तक से हटा दी गई। यद्यपि यह पुस्तक हिंदी भाषा–भाषी पाठ्यक्रफम4 में कापफी लोकप्रिय थी। तब से लेकर अब तक अनेक विवाद उत्पन्न हुए जिसका प्रभाव पाठ्यपुस्तकों पर पड़ा है। कुछ विवाद तर्कपूर्ण और उचित होते हैं जिनका असर विद्यार्थियों एवं पाठ्यक्रफम पर पड़ता है। ''बीसवीं सदी के अंतिम दशक में कांग्रेस शासित कर्नाटक सरकार में दसवीं कक्षा के हिंदी पाठ्यपुस्तक में कांग्रेस अध्यक्ष श्रीमती सोनिया गांधे को राष्ट्रीय एकता कायम करने वाली अदभुत महिला की संज्ञा गई है।''[5] इसी प्रकार बिहार स्टेट टेक्ट बुक पब्लिकेशन कारपोरेशन प्रा.लि. से प्रकाशित पुस्तक आठवीं की हिन्दी पाठ्यपुस्तक गद्य सोपान में 'मिट्टी के गौरव' नाम पाठ में तत्कालीन मुख्यमन्त्राी श्री लालू प्रसाद यादव की महिमा को मंडित किया गया है।

सन् ;2002–03द्ध में सी.बी.एस.ई. के पाठ्यक्रफम में ग्यारवीं बारहवीं कक्षा में मुख्य विषय हिंदी पढ़नेवाले विद्यार्थियों के पाठ्यक्रफम में प्रेमचन्द के उपन्यास निर्मला को हटाकर उस

समय की, अपरिचित रचनाकार मृदुला सिन्हा के उपन्यास 'जों मेहंदी के रंग' को शामिल कर लिया। जबरदस्त विरोध के बावजूद उपन्यास को हटाने के स्थान पर विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया। वरिष्ठ आलोचक नामवर सिंह ने इसकी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा'' निर्मला तमाम दृष्टियों से स्कूली बच्चों के योग्य था। इसलिए इसे स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल किया गया था निर्मला मंशाराम की पीड़ा और वेदना की मार्मिक कथा है इसकी कारण वह एक ट्रेजडी कथात्मक उपन्यास है। जो प्रेमचन्द को नहीं समझा सकता वे हिंदी साहित्य को नहीं समझ सकते।''[6]

स्त्री शिक्षा की दिशा में भी पाठ्यपुस्तकों की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती है। साहित्य स्त्री से संबंधित मुद्दों पर अद्भुत विचार प्रकट करता है। परन्तु जहाँ शिक्षा में स्त्री साहित्य की बात है वहां पर एक संकुचित धारणा सामने आती है। यदि आरम्भ से लेकर अब तक वे बुद्धिजीव के विचारों पर गौर करें तो हमें मिलता है कि स्त्री शिक्षा पर सभी की सोच संकुचित थी वे स्त्री को एक दायरे में सीमित रखना चाहते थे। हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत भारतेन्दु हरिशचन्द्र भी स्त्रियों को घर पर धर्मिक एवं नैतिक शिक्षा देने के पक्ष में थे जिससे उनका चारित्रिक विकास हो सके यद्यपि पंजाब के लाला देवराज का कन्या महाविद्यालय खोलना, फूल दंपति का कन्या पाठशाला खोलना, कलकत्ता में बेथून साहब का बालिका स्कूल खोलना जो देश का पहला का कॉलेज भी बना, आदि ऐसे सराहनीय प्रयास है जिन्होनें स्त्री शिक्षा की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी स्त्री शिक्षा पर महत्वपूर्ण पहल की गई और पहली बार परिवर्तन महिलाओं के जरिए करने की बात कही गई। श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में महिला शिक्ष के लिए स्थापित कमेटी की सिफारिश ध्यान देने योग्य है ''लोकतान्त्रिक, समाजवादी समाज में शिक्षा व्यक्तिगत क्षमताओं, दृष्टिकोणों और रूचियों से संबंधित होगी न कि लिंग भेद से। अतः ऐसे किसी भी समाज में पाठ्यक्रम में लिंग–आधारित विभाजन की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती।''[7] कोठारी कमीशन ने सभी लिंग भेद आधारित विभाजन को दूर करने के लिए कक्षा दस तक सभी विद्यार्थियों के लिए समान पाठ्यक्रम का प्रस्ताव रखा शोधकर्ता अजय गुप्ता द्वारा राजस्थान राज्य पाठ्यपुस्तक मंडल द्वारा प्रकाशित प्राईमरी की पाठ्यपुस्तकों का अध्ययन करने पर ये निष्कर्ष सामने आए। ''हिन्दी की कक्षा 3, 4 और 5 की

पाठ्यपुस्तकों में हमने स्त्राी/बालिका की विभिन्न पाठों की वर्णित स्थिति को जायजा लेने की कोशिश की है। हिंदी की तीनों पाठ्यपुस्तकों में आई 47 कहानियों में केन्द्रीय पात्राों के रूप में 25 पुरूषों के मुकाबले 5 महिलायें है जिन कहानियों में केन्द्रीय पात्राों के रूप में महिलाएं है वे वही प्रसि(परंपरागत और शायद लम्बे समय से पाठ्यपुसतकों में चली आ रही है जैसे– लक्ष्मीबाई, कालीबाई, पन्ना धय, जिस पाठ में वर्तमान संदर्भ है वहां भी नजरिया परपंरावादी और आदर्शवादी है।''[8]

इन तथ्यों को देखकर अलका सरागवी की उक्ति उचित प्रतीत होती है। 'औरत के लिए सारी शिक्षा का उद्दइेश्य वही का वही है। प्रचलित पैमाने के आधर पर एक सुयोग्य पत्नी, बहू और मां का बनना।'

सामन्यता पाठ्यव्रफम में स्त्राी आधरित ऐसी कथा–कहानियों अथवा जीवन–चरित्रा का वर्णन किया जाता है जिसमें स्त्राी एक अच्छी माँ के रूप में, आदर्श गृहणि के रूप में,एक होनहार बेटी के रूप में त्याग करते हुए पुरूषों की गलतियों को मापफ करते हुए अपना पफर्ज निभाती रहती है। या पिफर अपने कर्तव्य के लिए कुर्बान हो जाती है। सामजिक दायित्वों में योगदान देने वाली महिलाओं के चरित्राों का वर्णन पाठ्यव्रफम में बहुत ही कम ही मिलते है। प्रारंभिक स्तर से ही जहां से बच्चे छोटे–छोटे वाक्य बोलना सीखते हैं, वहीं से ही ''सीता झाड़ू निकालती है, मोहन पढ़ता है।'' इसी तरह के लिंग भेद को निर्धरित करने वाले अंतर स्पष्ट हो जाते है। यही सामाजिक मानसिकता जो कई शताब्दियों से चली आ रही है। जब तक इस मानसिकता में बदलाव नहीं होता तब तक पाठ्यव्रफम में सुधर की गुजांइश नहीं होगी।

अगला प्रश्न धर्मिक शिक्षा को लेकर है क्या नैतिक शिक्षा के नाम पर धर्मिक शिक्षा देना उचित है? डा. सर्वपल्ली शिक्षा आयोग ने धर्मिक शिक्षा की जरूरत पर जो दिया लेकिन ए.एल. मुदालियर ;1952–53द्ध के माध्यमिक शिक्षा आयोग की राय इस सवाल पर अस्पष्ट रही इसमें सुझाया गया कि ''विद्यालयों में धर्मिक शिक्षा केवल स्वैच्छिक आधर पर और विद्यालय के नियमित समय से अलग ही दी जा सकती है।'' 1959–60 में प्रकाश सीमित ने शिक्षा के सभी स्तरों पर धर्मिक शिक्षा आरम्भ करने की सलाह दी'' प्रारंभिक शिक्षा के चरण में भाषा के अध्यापन के पाठ्यविवरणों में पैगम्बरों संतों और धर्मगुरूओं के जीवन की कथाओं और उपदेशों को शामिल करने का सुझाव दिया। माध्यमिक स्तर के लिए उसने सुझाव दिया कि विद्यालय

के कार्यकलाप का आंरभ दो मिनट की मौन सभा के साथ किया जाएं जिसके बाद दुनियाभर के धर्मग्रंथों और महान् साहित्य से अंश पढ़े जाए''[9]

परन्तु एक धर्म से संबंध्ति रचना को ही क्या धर्मिक कहना उचित होगा? एक धर्म की धर्मिक रचना दूसरे धर्म की धर्मिक रचना हो यह आवश्यक नहीं। रामायण और महाभारत को हिन्दू समाज में धर्मिक ग्रन्थों का आदर मिला है परन्तु वर्तमान संदर्भो में यदि देखे बहुत से ऐसे मूल्य है जो आज त्याज्य है जैसे निम्न जाति और नारी के विषय में जो निर्देश तुलसी की रामायण में है उसे आज के संदर्भ में स्वीकार नहीं किया जा सकता। परन्तु सांस्कृतिक विरासत, राष्ट्रीय एकता और नैतिक जीवन मूल्यों की दुहाई देते हुए कक्षा 6 और कक्षा 7 के लिए हिंदी की पूरक पाठ्यपुस्तक के रूप में संक्षिप्त रामायण और संक्षिप्त महाभारत का एन. सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशन किया गया है। राष्ट्रीय एकता के उद्देश्य के क्या ये पुस्तकें पूरा कर रही है? हाल ही में रामानुजन के थ्री हंड्रेड वर्सेस आपफ रामायण को दिल्ली विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रफम में से हटा लिया गया। सनेटिक वर्सेज के लेखक सलमान रश्दी के कलकत्ता आगमन पर रोक और समाजशास्त्राी आशीष नंदी के जयपुर साहित्य उत्सव में दिए गए विचार को लेकर उनकी गिरफ्रतारी की मांग, मकबूल पिफदा हुसैन का भारत से निर्वासित करना आदि कुछ ऐसे प्रसंग है जो राष्ट्रीय एकता जैसे नारे की खिल्ली उड़ाते है।

क्योंकि साहित्य में इतिहास का समावेश भी होता है इसलिए एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित जवाहर लाल की पुस्तक जो निर्मला जैन द्वारा सम्पादित है 'भारतीय खोज' हरियाणा सरकार द्वारा माध्यमिक स्तर के पाट्यक्रफम में शामिल की गई है। इसलिए इतिहास से सम्बन्ध्ति तथ्यों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इतिहास की पुस्तकों में आर्यो का जिक्रफ एक नस्ल की तरह होता है। भारतीय संस्कृति को हिन्दू धर्म का पर्याय सि(किया जाता है। कबीर के जो दोहे पाठ्यपुस्तक में संकलित है वे ज्यादातर आध्यात्मिक और नैतिकता से संबंध्ति है सामाजिक पक्ष की अवहेलना की गई। कबीर के क्रफान्तिकारी रूप के दर्शन छात्राों को नहीं करवाए जाते। ऐसे शैक्षिक स्तर में हम कैसे कल्पना कर सकते हैं कि हमारे विद्यार्थी आगे चल धर्म निपरेक्ष छवि प्रस्तुत करेगें। क्षेत्राीय संस्कृति की अवहेलना संस्कृति के विकास में बाध्क है। क्षेत्राीय जन–जीवन और साहित्य के पक्ष से रूबरू हुए बिना तो संस्कृति के विकास की कल्पना ही नहीं की जा सकती। दलित आंदोलन, भक्ति आंदोलन आदिवासी साहित्य,

विशेष जन जातीय साहित्य लोकसाहित्य आदि कुछ ऐसे पक्ष है जिनका समावेश राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में भी और देश की सामाजिक परिस्थितियों को समझने के लिए नितांत आवश्यक है।

''सुप्रसि(पत्राकार एवं इतिहासकार अरविंद नारायण दास ने प्राथमिक कक्षाओं में इस्तेमाल की जाने वाली पाठ्यपुस्तकों को सर्वाध्कि महत्वपूर्ण मानते हुए कि जहां तक विचार और विश्लेषण का सवाल है तो उसकी क्षमता विद्यालय या विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों में हो जाती है। लेकिन प्राथमिक स्तर पर जो पढ़ाई होती है उसमें पाठ्यपुस्तकों में जिस प्रकार के तथ्यों को रखा जाता है उन्हें समझ सकने की क्षमता प्राथमिक कक्षाओं के छात्राों में नहीं होती। दुर्भाग्य की बात यह है कि सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण होते हुए भी सबसे हल्के स्तर पर उन पाठ्यपुस्तकों को लिया जाता है।''[10]

साहित्य में इतिहास से संबंध्ति बहुत सी बातों का अक्सर जिक्र्फ आता है। इनमें से हिंदू और मुसलमानों की लड़ाईयों से संबंध्ति तथ्य अवश्य होते है। वर्तमान संदर्भ में यदि देखें तो दोनों की आपसी ईर्ष्या–द्वैष का कारण भी यही है। यद्यपि दोनों ही ध्र्मो के पीर–पैगम्बरों और साधु–सन्तों ने एक–दूसरे को प्रभावित किया है। सिपर्फ साहित्य हीं नहीं, सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टिकोण से भी। परन्तु द्वैष की घटनाओं को पाठ्यक्र्फम में समाहित करने से नपफरत की चिंगारी शायद ही कभी बुझे। इसीलिए इतिहास से संबंध्ति घटनाओं का सोच–समझकर आलोचनात्मक दृष्टि से मूल्यांकन करके ही पाठ्यक्र्फम में समावेश करना चाहिए।

विद्यालयी शिक्षण की भाषा को लेकर सभी शिक्षा विदों की एकराय है कि भाषा सरल सहज और आम जीवन से जुड़ी होनी चाहिए परंतु व्यवहारिक रूप से ऐसा नहीं। सरल से सरल कहानियों में भी ऐसे दुरूह शब्द वाले शब्दार्थ और मुहावरें प्रयुक्त किये जाते है। जिससे भाषा बोझिल और अरूचिकर हो जाती है। मानव संसाध्न विकास मन्त्राालय द्वारा यशपाल समिति ;मार्च–1992द्ध की सिपफारशि में भी स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है हमारी पाठ्यपुस्तकें बच्चों के दृष्टिकोण से नहीं लिखी जाती। न तो संप्रेषण का ढंग और ना ही वर्णित पदार्थो का चयन और ना ही प्रयुक्त भाषा बच्चों को पाठ्यपुस्तक में वर्णित संसार को केन्द्र में रखती है।''[11]

यदि साहित्य मातृभाषा में पढ़ाया जाएं तो उसका प्रभाव शीघ्र होता है। वैज्ञानिक अध्ययन से भी यह प्रमाणित हो चुका है कि मातृभाषा की यदि बचपन में अवहेलना की जाएगी तो मस्तिष्क की संभावना घट जाएगी। विभिन्न विद्वानों ने मातृभाषा के महत्व को स्वीकारा है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने लेख 'शिक्षार स्वांगीकरन' में लिखा है। ''शिक्षा में मातृभाषा माता के दूध के समान होती है। ये सरल और सार्वत्रिाक उद्‌गार मौने बहुत पहले प्रकट किए और मैं उन्हें पिफर दोहरा रहा हूं जो उस समय अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव में थे उनके कानों के लिए ये शब्द अप्रिय हो यादि इन शब्दों का अभी भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता तो मेरा विचार है उसे लोग बार– बार दोहरायें''[12]

पाठ्‌यव्रफम का निर्माण करते समय विभिन्न आयोग समितियां और संस्थागत ढ़ांचों का निर्माण किया जाता है इनके सदस्य प्राय उच्च शिक्षा के बु(िजीव होते है। प्रारंभिक कक्षा के पाठ्‌यव्रफम का निर्माण भी इनहीं के द्वारा होता है। उच्च शिक्ष के बु(िजीव वर्गो द्वारा बाल मनोविज्ञान को समझते हुए यह दावा किया जाता है कि पाठ्‌यव्रफम बच्चों की आवश्यकताओं के अनुरूप है। परन्तु जिन शिक्षकों को रोज इन बच्चों के व्यवहार, उनकी समस्याओं और पाठ्‌यपुस्तक से सबंध्ति कठिनाईयों से जूझना पड़ता है। उनकी पूर्णता अवहेलना पाठ्‌यव्रफम निर्माण समिति करती है। राष्ट्रीय शिक्षक आयोग ;1983–84द्ध जिसके सदस्य सुप्रसि(शिक्षाविद् अनिल सद्‌गोपाल थे, जिन्होनें आयोग की गलत कार्यप्रणालियों से असंतुष्ट होकर त्यागपत्रा दे दिया था। इस आयोग का उद्‌देश्य बहुत व्यापक था। परन्तु सपफल रूप में यह व्रिफयान्वित नहीं हो सका ''विभिन्न प्रश्नों पर देश के शिक्षकों की राय जानने के लिए आयोग ने एक प्रश्नावली बनाई जो 0.25 प्रतिशत शिक्षकों ही मिल पाई। चालीस लाख शिक्षकों में से केवल 77 प्रश्नावालियों प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों को प्राप्त हो पाई जिन 0.25 प्रतिशत शिक्षकों को प्रश्नावली मिली उनमें अध्किांश शहरी क्षेत्रा के शिक्षक थे देश में सरकारी स्कूल का आधर गांव है लेकिन आयोग ने ग्रामीण स्कूलों और शिक्षकों की पूरी तरह अवहेलना कर दी।''[13]

कविता शिक्षण साहित्य की प्रमुख विध है परन्तु गद्य की अध्किता के कारण पद्या के प्रति छात्राों में आकर्षण उत्पन्न नहीं हो पा रहा है। सिपर्फ नीतिपरक और उपदेशात्मक कविताओं में बच्चों का रूझान कभी नहीं पैदा हो सकता। बच्चों की कविताएं उनके जीवन से

संबंध्ति हो जिसमें उन्हीं की भाषा हो, शरारत हो, उनका बचपन हो, उनकी शैतानियां हो। हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड की कक्षा 3 की पाठ्य पुस्तक में 'कौआ और कोयल' नामक कविता से बच्चों को नैतिकता का पाठ पढ़ाने की कोशिश की है परन्तु साथ–साथ श्यामवर्ण और गौर वर्ण में भेद करना भी सीखा दिया है। जैसेः– देखो कोयल काली है पर, मीठी है इसकी बोली

यह 'पर' के माध्यम से कोयल के गुण के साथ अवगुण भी प्रकट किया है। यह श्यामवर्ण के प्रति सामाजिक मानसिकता का परिणाम है। कहानी कला भी साहित्य का प्रमुख अंग है। परन्तु सिपर्फ नैतिकता के उद्देश्य से कहानी नहीं कहनी चाहिए। इस कहानी से हमें यह सीख मिलती है। यह कहकर बच्चों पर नैतिक मूल्यों का बोझ नहीं लादना चाहिए। विद्यालय से लेकर घर तक बच्चों से नीति और आदर्श की बातें बनाई जाती है। परन्तु इसका परिणाम यह होता है कि बच्चों में स्वतंन्त्रा विचारशीलता के स्थान पर स्वतन्त्रा विचारधरा का अनुशरण करने की आदत पड़ जाती है। जिस नैतिकता और आदर्श के वातावरण में हम बच्चें को बड़ा करते है। स्वतन्त्रा होते ही वह उनसे दूर भागता हे। आज की शिक्षा पद्यति का सबसे बड़ा दोष यही है कि वह प्रत्येक को दूसरे जैसा बनने की प्रेरणा देती है। राम जैसे बनों, श्रवण कुमार बनो, गांधि, नेहरू बनों किसी न किसी जैसे बनों लेकिन अपने जैसे नहीं बनो इससे हीनता का भाव पैदा होता है।

इस शोध पत्रा का मुख्य उद्देश्य यही है कि विद्यालय स्तर जो पाठ्यक्रफम लागू किया जाता है उसमें सभी पक्षों पर सोच–विचार कर पाठ्यपुस्तकों में समाहित करना चाहिए। छब्म्ज् 2005 ने कृष्ण कुमार तथा नामवर सिंह जैसे बुि(जीवी और भाषाविदों के सहयोग पाठ्यपुस्तकों में आलोचनात्मक दृष्टि प्रदान की है। बच्चों के स्तर के अनुरूप ही सामाजिक और राजनीतिज्ञ मुद्दों से संबंध्ति विचार ही पाठ्यक्रफम में समाहित करने चाहिए। तभी साहित्य का वास्तविक लक्ष्य प्राप्त हो सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद –निबन्धें की दुनिया, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली–2009, पृ. 65.
2. कुमार, कृष्ण– राज, समाज और शिक्षा, पृ. 80 के पूर्व पृष्ठ पर कैप्शन के रूप में
3. झा., कमलानंद–पाठ्यपुस्तक की राजनीति, ग्रन्थ शिल्पी ;इंडियाद्ध प्राइवेट लिमिटेड बी–7, सरस्वती काम्पलैक्स, सुझाव चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली, पृ. 24
4. तलवार, वीरभारत, रस्साक्शी, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृ. 80
5. झा, कमलानंद– पाठ्यपुस्तक की राजनीति, ग्रन्थ शिल्पी ;इंडियाद्ध प्राईवेट लिमिटेड, लक्ष्मी नगर, दिल्ली–2011, पृ. 183
6. झा, कमलानंद– पाठ्यपुस्तक की राजनीति, ग्रन्थ शिल्पी ;इंडियाद्ध प्राईवेट लिमिटेड, लक्ष्मी नगर, दिल्ली–2011, पृ. 186.
7. शिक्षा विमर्श, दिगंतर, मई, 1998, जगतपुरा, जयपुर, पृ. 39
8. उपर्युक्त, पृ. 186
9. झा, कमलानन्द– मस्ती की पाठशाला, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्राालय, भारत सरकार, लोधी रोड़, नई दिल्ली, पृ. 9.
10. झा, कमलानन्द– मस्ती की पाठशाला, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्राालय, भारत सरकार, लोधी रोड़, नई दिल्ली पृ. 10.
11. परिपेक्ष्य वर्ष–एक, अंक–एक, अप्रैल, 1994, पृ. 149
12. बंगाल, एजुकेशन वीक, 1986, खंड–1, पृ. 171.
13. झा, कमलानंद– पाठ्य पुस्तक की राजनीति ग्रन्थ शिल्पी ;इंडियाद्ध प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ. 155.